International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN Number: 2394-7519
IJSR 2014; 1(1): 15-18
© 2014 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 18-11-2014
Accepted: 08-12-2014

Umesh shukl
Lecturer Dept. of Vyakaran
Srimati Laad Devi Sharma
Pancholi Sanskrit
Mahavidyalay
Barundani Bhilawara
Rajasthan.

Correspondence
Umesh shukl
Lecturer Dept. of Vyakaran
Srimati Laad Devi Sharma
Pancholi Sanskrit
Mahavidyalay Barundani
Bhilawara Rajasthan.

संस्कारों की आवश्यकता

उमेश शुक्ल

प्रस्तावना
वैदिकदर्शन में संस्कृति और संस्कार दोनों अनेकार्थ शब्द है।जो की एक दूसरे के सम्पूरक है। संस्कार शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए जड़ वस्तु के संस्कार का उदाहरण दिया है, किन्तु हम तो यहाँ मनुष्य के संस्कार का विचार कर रहे है। स्नानादि द्वारा शरीर की शुद्धि के लिए शरीर–संस्कार शब्द से हमारा हेतु मनुष्य के मन, बुद्धि, भावना, सामाजिकता आदि को विकसित करने से है।

कूटशब्द: अन्तर्निहित, अक्षुण्ण, सैद्धान्तिक, परवर्ती, मर्मस्पर्शी, रसाभास, दशार्णेश, प्रभातकालीन ।

गर्भाधान संस्कार
गर्भ क्या है? :– गर्भ शब्द से मन, चेतना, पञ्चमहाभूतों के विकारों का बोध होता है। गर्भाशय में स्थित पुरुष का शुक्र और स्त्री का शोणित जब एक दूसरे से युक्त हो जाते है और उनमें आत्मा का अधिष्ठान हो जाता है, तो वह अष्ट प्रकृति और षोड़श विकृतियों से युक्त सजीवपिण्ड ही गर्भ कहलाता है।
गर्भावक्रान्ति का अर्थ :– गर्भावक्रान्ति का अर्थ पुरुष और स्त्री बीजों का आपस में मिलकर गर्भोत्पत्ति की क्रिया करना है। अवक्रान्ति से अवक्रमण, अवतरण, उपगमन आदि का बोध होता है। शुक्र और आर्त्तव के सम्मिश्रण से गर्भ के उत्पन्न होने तक की विधि गर्भावक्रान्ति कहलाती है।
विवाह का गर्भाधान पारस्परिक निकटतम सम्बन्ध है इसलिए गर्भाधान हेतु दोनों (स्त्री–पुरुष) का वयस्क होना अत्यावश्यक है। इससे पहले यदि गर्भाधान होता है तो सन्तान अल्पजीवी, नष्ट या दुर्बल होती हैं। जब माता–पिता का शारीरिक–मानसिक दृष्टि से सम्पूर्ण विकास होगा तभी स्वस्थ्य सन्तान हो सकती है। गर्भस्य आधानं गर्भाधानम् अर्थात्जिस कर्म के द्वारा गर्भ में बीज का स्थापन पुरुष द्वारा स्त्री में किया जाता है, उसे गर्भाधान कहा जाता है। इस संस्कार से वीर्य सम्बन्धि अथवा गर्भ सम्बन्धित पापों का नाश हो जाता है। सर्वप्रथम ऋतु स्नान के पश्चात्भार्या स्त्रीधर्म में होने से या रजोदर्शन से १६ दिन तक गर्भाधान के योग्य होती है।

पुंसवन संस्कार
गर्भ में स्थित बालक तीन मास का हो जाता है और गर्भिणी के शरीर में गर्भ के विविध रूप प्रकट होने लगते है, तब पुंसवन संस्कार (गर्भस्थ सन्तान को पुरुष का :प देने हेतु यह संस्कार किया जाता है।) इसमें किया जाता है। पुम्नामक नरक से मुक्ति पाने हेतु पुत्र की कामना की जाती है। पितृऋण से मुक्ति हेतु पुत्रप्राप्ति आवश्यक है, जिसके लिए पुंसवन कार्य किया जाता है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार
जब तक सन्तान माता के पेट में रहती है, तब तक उसका शारीरिक–मानसिक विकास पूर्णतः माता पर ही निर्भर है इसलिए शारीरिक व मानसिक विकास की पुष्टि हेतु सीमन्तोन्नयन संस्कार करना चाहिए।

जातकर्म संस्कार
जातक के जन्म के पश्चात् पिता अपने पुत्र के मुख का दर्शन करने के पश्चात् नान्दी श्राद्धावसान जातकर्म विधि को सम्पन्न करे :–

जातं कुमारस्य स्वं दृष्ट्वा स्नात्वाऽनीय गुरुम् पिता।
नान्दी श्राद्धावसाने तु जातकर्म समाचरेत्।।

आधुनिकर्ता में जातक के जन्म के पश्चात्डॉक्टर, नर्स इत्यादि बालक के शरीरक से जरायु पृथक्

करके मुख, नाक, कान, आँख इत्यादि को शुद्ध वस्त्र अथवा रुई से शुद्ध (साफ) करके बालक को पिता की गोद में देवे। पिता नाड़ीछेदन संस्कार करने के बाद ऊष्ण जल से बालक को स्नान करवाकर प्रसूति–गृह से बाहर आकर विधिपूर्वक गणपत्यादि देवों का स्मरण करे।

नामकरण संस्कार

जीवन का सम्पूर्ण आधार नाम ही है, इसके बिना मनुष्य की पहचान तो असम्भव ही हो जाती है।

व्यक्ति–संज्ञा का महत्व जीवन में सर्वोपरि है। यथा –

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्येहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभेत्मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म।।

प्रायः बालकों का नाम सम अक्षरों में रखना चाहिए तथा बालिकाओं का नाम विषम अक्षरों रखना चाहिए। बालकों के नाम प्रायः पुल्लिग ही होने चाहिए तथा बालिकाओं का नाम स्त्रीलिङ्ग अक्षरों में ही होना चाहिए। दैत्यों (रावण, महिषासुर, चण्ड–मुण्ड, शूर्पणखा, सुरसा, खर–दूषण) के नाम पर जातक का नाम नही होना चाहिए।

अन्नप्राशन संस्कार

वेदों और उपनिषदों में भी अन्नप्राशन हेतु निर्देश किया गया है। माता के दूध से पोषित होने वाले बालक को प्रथम बार अन्नप्राशन कराने का प्रचलन प्रायः सभी स्थानों पर बहुत ही धूम–धाम से आयोजित किया जाता है।

जन्मतो मासि षष्ठे स्यात्सौरेणोत्तममन्नदम्।
तदभावेऽष्टमे मासे नवमे दशमेऽपि वा।
द्वादशे वापि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम्।
सम्वत्सरे वा सम्पूर्णे केचिदिच्छन्ति पण्डिताः।। – नारद
षण्मासञ्चौनमन्नं प्राशयेल्लघु हितञ्च।। – सुश्रुत

चूड़ाकरण संस्कार (चौलकर्म अथवा मुण्डनसंस्कार अथवा वपनक्रिया) :–

यह संस्कार जातक के तृतीय, पञ्चम अथवा सप्तम वर्ष में किया जाता है। धर्मशास्त्रों के अनुसार प्रत्येक जातक के लिए दीर्घायु, सौन्दर्य तथा कल्याण की प्राप्ति, तेजवृद्धि हेतु यह संस्कार किया जाता है, इसे न करने पर आयु क्षीण होती है। यथा –

तेन ते आयुषे वपामि सुशश्लोकार्य स्वस्तयैं – आश्वलायन गृह्यसूत्र

आयुर्वेद के अनुसार भी चूड़ाकरण के प्रयोजन का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। सुश्रुत के अनुसार – केश, नख, लोम अथवा केशों के अपमार्जन छेदन से हर्ष, लाघव, सौभाग्य और उत्साह की वृद्धि तथा पाप का उपशमन होता है। यथा –

पापोशमनं केशनखरोमापमार्जनम्।
हर्षलाघवं सौभाग्यकरमुत्साहवर्धन।। – चिकित्सास्थान

शिशु की माता के रजस्वला होने पर उसके शुद्ध होने तक यह संस्कार स्थगित कर दिया जाता है क्योंकि इस अवधि में यह संस्कार होने पर अनेक दुष्परिणाम (वैधव्य, मूर्खता, मृत्यु) की आशंका होती है।

इस पर मध्यभाग में जहाँ बालों का भँवर होता है, वहाँ शरीर की सम्पूर्ण नाडियों का मेल होता है। इस स्थान को श्ब्रह्मरन्ध्र अथवा मर्मस्थलय कहते है। इसी मर्मस्थान की सुरक्षा के लिए चोटी रखने का विधान है।

एचूड़ाकरण में शिखावपन का निषेध है क्योंकि शिखा वाले स्थान पर ही ब्रह्मरन्ध्र होता है। केशों द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से होकर सूर्य रश्मि शरीर में प्रवेश करते है और उसी मार्ग से शरीर में स्थित प्राण सूर्य की ओर जाते है इसीलिए उपासना आदि कर्मों के समय शिखाबन्धन का नियम है, जिससे अन्तःकरण का प्रकाश अथवा तेज धूप सूर्य के आकर्षण से बाहर न निकल सके।

उपनयन संस्कार

वर्तमान युग में उपनयन संस्कार प्रतीकात्मक :पधारण करता जा रहा है। विरल परिवारों में यथाकाल विधि–व्यवस्था के अनुःप उपनयन संस्कार होते है। एक ही दिन अल्पावधि में चूड़ाकरण, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ और केशान्त कर्म के साथ समावर्तन संस्कार सहित सभी महत्वपूर्ण संस्कार एकसाथ कर दिये जाते है।

मनुस्मृति के अनुसार विभिन्न वर्णों के लिए आयु की सीमा का निर्धारण किया गया है। यथा –

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।। –
मनुस्मृति

यदि किसी वटु की गुरुशुद्धि नहीं हो तो क्या करे ? – ज्योतिषचन्द्रिका के अनुसार गोचराष्टक वर्गों से यदि किसी वटु की गुरुशुद्धि नहीं बनती हो तो सूर्य के मीन राशि में आने पर चौत्र में उपनयन संस्कार करना चाहिए।

यथा :– **गोचराष्टकवर्गाभ्यां यदि शुद्धिर्न जायते।**
तस्योपनयनं कुर्वीत चौत्रे मीनगते रवौ।।

क्या आठवें वर्ष में भी गुरुशुद्धि देखनी चाहिए ? – पौलस्त्यजी के मतानुसार आठवें वर्ष में गुरुशुद्धि नहीं हो तो उपनयन नहीं करना चाहिए।

यथा : – **यदा गर्भाष्टमे वर्षे शुद्धिर्नास्ति बृहस्पतेः।**
अष्टमे वा तथाऽप्येवं व्रतं तत्र न कारयेत।।

उपनयन संस्कार किस समय करे ? – सामान्यतया मन्वादि ऋषियों ने वटु के उपनयन का समय ब्राह्मणों के लिए गर्भ से आठवाँ वर्ष, क्षत्रियों के लिए ग्यारवाँ वर्ष तथा वैश्यों के लिए बारहवाँ वर्ष निर्धारित किया है।

यथा :– **गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।**
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।।
द्विज :– **द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जायते इति द्विजः।**

मलमूत्र त्याग करते समय यज्ञोपवीत को दाहिने कान में क्यों लपेटते हैं ? – १. गृह्यसूत्रकारों ने उपवीत को शौच, लघुशंका के समय दाहिने कान में लपेटने का विधान बताया है।

यथा :– दिवासन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ च दक्षिणामुखः।।

अन्य :– निवीती दक्षिणकर्णे यज्ञोपवीतं कृत्वा.....पुरीषे विसृजेत।।

(वैखानसधर्मप्रश्र, २–६–१, शौचविधि)

अन्य :– यज्ञोपवीतं शिरसि दक्षिणकर्णे वा कृत्वा। (बौधायनगृह्यसूत्र)

अन्य :– कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः। कुर्यान्मूत्रपुरीषे च...।।

अन्य :– कर्णस्थब्रह्मसूत्रो मूत्रुपरीषं विसृजति।। (आग्निवेश्य गृह्यसूत्र)

यथा :– आदित्या वसवो रुद्रा वायुरग्निश्च धर्मराट्।
विप्रस्य दक्षिणेकर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः।।

अन्य :– मरुत्सोम इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ तथैव च।
एते सर्वे च विप्रस्य नित्यं तिष्ठन्ति दक्षिणे।।

(गोभिल)

यज्ञोपवीत का हमारे स्वास्थ्य से भी गहरा सम्बन्ध है। यह हमें शुचिता–पवित्रता का पाठ पढ़ाता है। यह मलमूत्र त्याग के पूर्व दाहिने कान को बाँधकर आँतों की अपकर्षण शक्ति को बढ़ाता है, जिससे कब्ज दूर होता है। मूत्राशय की मांसपेशियों का संकोचन वेग से होने लगता है। इसके परीक्षण विदेशों में होते रहे है और यज्ञोपवीत को कान में लपेटने से वीर्यक्षरण और रक्तचाप में नियन्त्रण से होने वाले लाभ को वहाँ स्वीकार किया गया है। योगशास्त्र में स्मरणशक्ति तथा नेत्रज्योति बढ़ाने के लिए कर्णपीडासन योग का महत्व बताया गया है। इटली के प्रसिद्ध न्यूरो सर्जन प्रोफेसर ऐनारीका पिरांजली ने यह सिद्ध किया है कि कान में जनेऊ लपेटने से रक्तचाप नियन्त्रित रहता है और हृदय मजबूत होता है।

समावर्तन संस्कार

समावर्तन का अर्थ है विद्याध्ययन प्राप्तकर ब्रह्मचारी युवक का गुरुकुल से घर की ओर प्रत्यावर्तन।

तत्र समावर्त्तनं नाम वेदाध्यनानन्तरं गुरुकुलात्स्वगृहागमनम्वीर मित्रोदय।।

विष्णुस्मृति के अनुसार कुब्ज, वामन, जन्मान्ध, बधिर, पङ्गु तथा रोगियों को यावज्जीवन ब्रह्मचर्य में रहने की व्यवस्था है :–

कुब्जवामनजात्यन्धक्लीब पङ्वार्त रोगिणाम्।
व्रतचर्या भवेत्तेषां यावज्जीवमनंशतः।।
अनाश्रमी न तिष्ठेच्च क्षणमेकमपि द्विजः।
आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः।।

– दक्षस्मृति

केशान्त संस्कार

यह संस्कार प्रायः १६वें वर्ष में किया जाता है । इस संस्कार का सम्बन्ध भी गुरुकुल प्रथा से है। केशान्त अथवा प्रथम क्षौरकर्म चार वैदिक व्रतों में से एक था। केशान्त संस्कार में ब्रह्मचारी के श्मश्रु का सर्वप्रथम क्षौर किया जाता था। इसे गोदान भी कहा जाता है क्योंकि इस अवसर पर आचार्य को गौ का दान किया जाता था तथा नाई को उपहार दिये जाते थे। गोदान करके किशोर नयी अवस्था में प्रवेश करने का सङ्कल्प लेता था। पहले अध्ययन का कार्य १२वें से १६वें वर्ष तक रहता था और अध्ययन के बीच में यह संस्कार सम्पन्न होता था लेकिन अब तो यह संस्कार यज्ञोपवीत संस्कार के साथ प्रतीकात्मक रूप में कर दिया जाता है।

केशानां अन्तः समीपस्थितः श्मश्रुभाग इति व्युत्पत्या केशान्तशब्देन श्मश्रुणामभिधानात्श्मश्रु–संस्कार एव केशान्त शब्देन प्रतिपाद्यते। अत एवाश्वलायनेनापि। मश्रुणीहोन्दति इति श्मश्रुणां–संस्कार एवात्रोपदिष्टः।

श्मश्रु–संस्कार ही केशान्त संस्कार है, इसे गोदान–संस्कार भी कहा जाता है क्योंकि श्गौच्य नामक केश (बालों) का भी अर्थ है। केशों का अन्त भाग अर्थात् समीप श्मश्रु भाग ही कहलाता है। मल्लिनाथ के अनुसारः–

गावो लोमानिकेशा दीयन्ते खड्यन्तेऽस्मिन्नति व्युत्पत्या श्गोदानंच नाम ब्राह्मणादीनां षोड्शादिषु वर्षेषु कर्त्तव्यं केशान्ताख्यकर्मोच्यते।।

इस संस्कार में उच्चारित मन्त्र चौल–संस्कार के समान ही है। केवलमात्र केशान्त–संस्कार में सिर के स्थान पर दाढ़ी–मूँछों का क्षौर होता था। चूड़ाकरण के समान ही दाढ़ी तथा मूँछ के बाल और नख गोबर के पिण्ड या आटे के पिण्ड में डालकर जल में फेंक दिये जाते थे।

विवाह संस्कार :–

विवाहमास :– चौत्र, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक तथा पौष इन मासों को विवाह के लिए निषिद्घ मानते है। गर्ग तथा राजमर्त्तण्डकार तथा अन्य ज्योतिष के ग्रन्थकारों ने चौत्र तथा पौष मासों को वर्जित करके शेष दस मासों को विवाह के लिए शुभ माना हैं।

अथ जन्ममासादिषु निषेधः :– सबसे बड़े लड़के अथवा लड़की के जन्ममास (जन्मतिथि से ३० दिन), जन्मनक्षत्र अथवा जन्मतिथि में विवाह करना अशुभ हैं। द्वितीयादि गर्भोत्पन्न का दोष नहीं होता।

अथ जन्ममासादिषु निषेधः :– सबसे बड़े लड़के अथवा लड़की के जन्ममास (जन्मतिथि से ३० दिन), जन्मनक्षत्र अथवा जन्मतिथि में विवाह करना अशुभ हैं। द्वितीयादि गर्भोत्पन्न का दोष नहीं होता।

यदि एक साथ दो कार्य करने हो तो :– एक घर में दो शुभ काम करना मना हैं परन्तु अति आवश्यकता में ६ दिन का अन्तर देकर दो घरों में अलग–अलग मण्डप रोपण करके जो पुरोहित पहला कार्य करा चुका हैं उसी से दूसरा कार्य न करावें, दूसरे आचार्य से कराए। इसी प्रकार जिस गृह में पहला कार्य हुआ हो तो दूसरे कार्य में दूसरे घर में मण्डप रोपण करके कार्य करें।

ज्येष्ठ विचारः :– ज्येष्ठ पुत्र व कन्या का विवाह ज्येष्ठ मास में करना अशुभ हैं। अति आवश्यकता में कृत्तिका नक्षत्रस्थ सूर्य को छोड़कर दानादिपूर्वक करें।

छः मास के भीतर दो विवाह आदि का निर्णय :– दो सगी बहनों का विवाह एक साथ या छः मास के बाद करें तो निस्सन्देह ३ वर्ष के भीतर अशुभ परिणाम मिलता हैं। पुत्र के विवाह के भीतर छःमास तक कन्या का विवाह न करें और कन्या–पुत्र के विवाह बाद छःमास तक यज्ञोपवीत न करें अर्थात् पहले कर ले और मङ्गल कार्य के पीछे अमङ्गल अर्थात् श्राद्ध तिलतर्पण, मुण्डन भी न करें। वर्ष परिवर्तन पर कर सकते है। वहाँ छःमास का विचार नहीं हैं। यह छःमास का निषेध तीन पीढ़ी तक ही हैं।

सारांश–

मानव जीवन विशुद्ध और उन्नत बनाने के उद्देश्य से संचालित षोड़श संस्कार व्यवस्था अनादिकाल से भारतीय संस्कृति का अभिन्न अङ्ग रही है। संस्कार–संज्ञक क्रिया–कलाप प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए अनिवार्य कर्तव्य है, परन्तु कालान्तर में यह विशेषतया ब्राह्मणों के लिए ही करणीय माना जाने लगा है।

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारादद्विज उच्यते। अर्थात् मनुष्य जन्म से द्विज नहीं होता है, अपितु संस्कारों के पश्चात् ही उसकी द्विज संज्ञा होती है। अपने–अपने कर्म के अनुसार ही वर्णों का निर्धारण होता है।

षोड़श संस्कारों की संख्या के विषय में स्मृतिकारों के विभिन्न मत :–

आजकल बहुत से ऐसे दम्पति है जो सन्तान न होने के कारण दुःखी है लेकिन ऐसा नहीं है कि उनके सन्तान हो ही नहीं सकती। आयुर्वेद में ऐसे कई उपाय दिए गये है जिनके द्वारा गर्भाधान हो सकता है। यहाँ हम उन्हीं उपायों की विशद विवेचना करेंगे।

निष्कर्ष

मनुष्य के जीवन में संस्कारों का नाम होना अत्यन्त आवश्यक है तभी मानव मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। शास्त्रों में सूर्योदय से ही मनुष्य के नित्यकर्मों के सम्बन्ध में विशद विवेचन किया गया है।यदि मनुष्य प्रकृति का अनुसरण करे, तो अनेकानेक व्याधियाँ मनुष्य से

स्वतः ही दूर हो जाती है। उदाहरण के लिए हम पशु–पक्षियों की जीवनचर्या देख सकते है। मनुष्य के जीवन में संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त आवश्यकता पड़ती है। यदि मनुष्य भी जीवन में शास्त्रों में बताये गये संस्कारों को अंगीकार कर ले तो वह स्वयं तो सात्विक बन ही जाता है, आस–पास क सामाजिक लोग भी उनसे प्रेरणा लेने लगते है।इस निबन्ध में गर्भाधान संस्कार से लेकर विवाह संस्कार तक वर्णन किया गया है।